

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 1: उद्धव और विदुर का मिलन

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



यमुना के तट पर, वर्षों बाद मिलते दो भक्त एक-दूसरे के आलिंगन में समा जाते हैं — और इसी के साथ तृतीय स्कन्ध का आरम्भ उस स्नेहिल, व्याकुल प्रश्न से होता है: “कहो, क्या सब कुशल से हैं?”

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। इस अध्याय के साथ हम एक सीमा पार करते हैं: द्वितीय स्कन्ध समाप्त हो चुका है, और तृतीय स्कन्ध का आरम्भ होता है। पूर्व स्कन्ध के अन्त में ब्रह्मा ने नारद से काल तथा उसके विभागों का विस्तृत वर्णन “आगे, तृतीय स्कन्ध में” करने का वचन दिया था। उसी वचन को पूर्ण करते हुए श्रीशुकदेव

अब तृतीय स्कन्ध का आरम्भ राजा परीक्षित को यह स्मरण कराते हुए करते हैं कि यह गूढ़ शिक्षा एक विशेष श्रोता को दी गई थी — महर्षि मैत्रेय द्वारा, स्वयं के परिवार के राजमहल से निष्कासित, महान् विदुर को। किन्तु उस शिक्षा को बताने से पहले श्रीशुकदेव को उसकी पृष्ठभूमि बतानी होगी: कैसे शान्तिप्रिय मन्त्री विदुर हस्तिनापुर से अपमानित होकर निकाले गए, कैसे उन्होंने वर्षों एकाकी तीर्थयात्रा की, और कैसे, एक शुद्ध भक्तिपूर्ण क्षण में, यमुना के तट पर वे भगवान् के एक अन्य प्रिय सेवक उद्धव से पुनः मिले। तृतीय स्कन्ध का यह प्रथम अध्याय उसी पुनर्मिलन का वर्णन है — दोनों मित्रों की बातचीत की भूमिका, और सबसे बढ़कर, वह दीर्घ, स्नेहिल प्रश्नावली जिसके द्वारा विदुर अपने हर प्रियजन का कुशल-क्षेम पूछते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 1 (प्रथम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: उद्धव और विदुर का मिलन
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए); राजा परीक्षित (दो संक्षिप्त प्रश्न पूछते हुए); तथा विदुर (जिनका उद्धव को दिया गया दीर्घ सम्बोधन अधिकांश अध्याय में है) — यह सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य की सभा को सुनाई जाती है
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित (श्रीशुकदेव की कथा के भीतर); उद्धव (विदुर के सम्बोधन के भीतर); तथा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य का ऋषि-समुदाय (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: यमुना नदी का तट, विदुर की दीर्घ तीर्थयात्रा की समाप्ति पर; जो श्रीशुकदेव के परीक्षित को दिए गंगा-तटीय उपदेश तथा नैमिषारण्य के वन-आश्रम के भीतर कथित है
- मुख्य विषय-वस्तु: धर्मपूर्ण परामर्श देने के कारण हस्तिनापुर से विदुर के निर्वासन, उनकी वर्षों की एकाकी तीर्थयात्रा, तथा उद्धव के साथ उनके आनन्दमय पुनर्मिलन की पृष्ठभूमि — जिसके माध्यम से वे यदु तथा पाण्डव, दोनों कुलों के कुशल-क्षेम के विषय में व्याकुलतापूर्वक पूछते हैं
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 1, श्लोक 1-45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

द्वितीय स्कन्ध से आगे बढ़ा हुआ प्रश्न

श्रीशुकदेव तृतीय स्कन्ध का आरम्भ उसी सूत्र को पुनः उठाकर करते हैं जिसे उन्होंने अधूरा छोड़ा था। यही प्रश्न — काल तथा उसके मापों की प्रकृति, जिसे बताने का वचन ब्रह्मा ने नारद को “आगे, तृतीय स्कन्ध में” दिया था — श्रीशुकदेव के अनुसार, बहुत पहले विदुर ने महर्षि मैत्रेय से पूछा था, जब विदुर अपने समृद्ध घर को त्यागकर वन में गए थे। उसी क्षण श्रीशुकदेव परीक्षित को इस वंश के इतिहास की एक पूर्व-वर्णित घटना का भी स्मरण कराते हैं: कैसे भगवान् श्रीकृष्ण, पाण्डवों के दूत के रूप में हस्तिनापुर पधारते हुए, दुर्योधन के राजमहल में नहीं, अपितु विदुर के सामान्य घर में ठहरे — जैसे कि, शास्त्र कहता है, “वह उनका अपना ही घर हो।”

श्रीशुक उवाच

एवमेतत्पुरा पृष्ठो मैत्रेयो भगवान् किल ।

क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca evam etat purā pṛṣṭo maitreyo bhagavān kila kṣattrā vanaṁ praviṣṭena tyaktvā
sva-gṛham ṛddhimat*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: यही प्रश्न विदुर ने पूर्वकाल में पूजनीय मैत्रेय ऋषि से पूछा था, जब वे अपने समृद्ध घर को त्यागकर वन में प्रविष्ट हुए थे।
(स्कन्ध 3, अध्याय 1, श्लोक 1)

राजा परीक्षित यह सुनकर अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाते। वे पूछते हैं — विदुर की मैत्रेय से भेंट कहाँ और कब हुई थी? और वास्तव में उन्होंने क्या प्रश्न पूछा था — क्योंकि, वे तर्क देते हैं, यह निश्चय ही सामान्य नहीं रहा होगा, जब मैत्रेय जैसे महान् ऋषि ने स्वयं उसका पूर्ण उत्तर देने का कष्ट उठाया। सूतजी नैमिषारण्य के ऋषियों को बताते हैं कि राजा के इस उत्साहपूर्ण प्रश्न से प्रसन्न होकर श्रीशुकदेव केवल इतना कहते हैं, “सुनो!” — और कथा को उसके वास्तविक आरम्भ से कहना प्रारम्भ करते हैं।

एक विभाजित कुल का पतन

विदुर के घर छोड़ने का कारण स्पष्ट करने के लिए श्रीशुकदेव को, कुछ संक्षिप्त किन्तु पीड़ादायक श्लोकों में, सम्पूर्ण कुरु-वंश की त्रासदी पुनः सुनानी पड़ती है। वे परीक्षित को स्मरण कराते हैं कि किस प्रकार अन्धे राजा धृतराष्ट्र, जिन्होंने अपनी दृष्टि के साथ-साथ अपना नैतिक विवेक भी खो दिया था, अपने दुष्ट पुत्रों को हर अन्याय में समर्थन देते रहे — अपने छोटे भाई के अनाथ पुत्रों (युधिष्ठिर आदि) को लाक्षागृह में ठहराकर उसे जलाने की योजना बनाई। वे उस दिन को स्मरण कराते हैं जब दुःशासन ने रानी द्रौपदी को केशों से खींचकर खुले दरबार में लाया, और धृतराष्ट्र ने उसे रोकने के लिए कुछ नहीं किया। वे उस छल-भरे द्यूत-क्रीड़ा को स्मरण कराते हैं जिसने धर्मात्मा युधिष्ठिर को तेरह वर्षों के वनवास में भेज दिया, और कैसे, वनवास समाप्त होने पर जब पाण्डवों ने अपने अधिकार का राज्य-भाग वापस माँगा, तो सत्ता के मोह में अन्धे दुर्योधन ने साफ़ इनकार कर दिया। यहाँ तक कि जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण शान्ति-दूत बनकर आए और भीष्म आदि वयोवृद्धों को “अमृततुल्य” वचन कहे, तब भी दुर्योधन ने उन्हें महत्त्व नहीं दिया; शास्त्र स्पष्ट कहता है कि उसका पुण्य-भण्डार पहले ही समाप्त हो चुका था।

इसी वातावरण में एक बार व्यथित हृदय से धृतराष्ट्र ने अपने छोटे भाई विदुर को एकान्त कक्ष में बुलाकर उनसे निष्कपट परामर्श माँगा — वह परामर्श जो शताब्दियों बाद भी *विदुर-नीति* के नाम से स्मरण किया जाता है।



हस्तिनापुर राजमहल के एक एकान्त कक्ष में विदुर अपने भाई धृतराष्ट्र को वह निष्कपट परामर्श देते हैं, जो आगे चलकर विदुर-नीति के नाम से जाना गया, और पाण्डवों का उचित भाग लौटाने का अनुरोध करते हैं (श्लोक 6-13)।

विदुर का परामर्श और दुर्योधन का क्रोध

धृतराष्ट्र से कहे गए विदुर के वास्तविक शब्द सीधे प्रस्तुत किए गए हैं। युधिष्ठिर का भाग लौटा दो, वे कहते हैं — युधिष्ठिर, जो किसी को शत्रु नहीं मानते और सहन करने योग्य न होने पर भी अन्याय सहते आए हैं, और जिनके साथ वह भीषण भीम भी हैं, जो सर्प के समान क्रोध से फुँफकार रहे हैं। इससे भी अधिक, विदुर अपने भाई को स्मरण कराते हैं कि पाण्डवों का पक्ष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने लिया है — जिन्हें यादव-प्रमुख देवता की भाँति पूजते हैं, जो अपनी राजधानी द्वारका में विराजमान हैं, बड़े-बड़े राजाओं को जीतकर, और जिनके पक्ष में समस्त ब्राह्मण एवं देवता हैं। तत्पश्चात् विदुर वह वाक्य कहते हैं जो उन्हें अपना घर गँवा देगा: यह साक्षात् दुर्गुण है, वे धृतराष्ट्र से कहते हैं, जो दुर्योधन के रूप में इस घर में प्रविष्ट हो गया है — पुत्र के रूप में पोषित परमपुरुष का यह शत्रु — और यही कारण है कि धृतराष्ट्र स्वयं अपनी शोभा खो चुके हैं। सम्पूर्ण कुल के हित में, विदुर आग्रह करते हैं, इस “अभागे” को तुरन्त त्याग दो।

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।

पुष्पासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥ १३ ॥

sa eṣa doṣaḥ puruṣa-dviḍ āste gṛhān praviṣṭo yam apatya-matyā puṣṇāsi kṛṣṇād vimukho gata-śrīṣ tyajāśv aśaivam kula-kauśalāya

अर्थ: यही वह दोष है — परमपुरुष का शत्रु, जिसे पुत्र मानकर घर में लिया गया है — जिसका तुम पोषण कर रहे हो, कृष्ण से विमुख होकर अपनी सम्पदा खोकर; कुल के कल्याण हेतु इस अशुभ को तुरन्त त्याग दो। (स्कन्ध 3, अध्याय 1, श्लोक 13)

सभा में क्रोध की आँधी उठ खड़ी होती है। यद्यपि विदुर का स्वभाव इतना सौम्य था कि साधुजन भी उसकी कामना करते, किन्तु जब उन्होंने वहीं ये शब्द कहे, तो दुर्योधन तथा उसके साथी — कर्ण, दुःशासन और शकुनि — का क्रोध सीमा पार कर गया। दुर्योधन तिरस्कारपूर्वक कहता है, “इस कुटिल दासी-पुत्र को यहाँ किसने बुलाया?” — उस पर आरोप लगाते हुए कि वह अपने स्वामी के अन्न पर पलकर शत्रु का कार्य कर रहा

है, और आदेश देता है कि उसे तुरन्त राजधानी से निष्कासित कर दिया जाए, केवल शेष संयम के कारण उसका प्राण छोड़ दिया जाए। विदुर, यद्यपि यह अपमान उन्हें बाण की भाँति बीँध देता है, एक अद्भुत कार्य करते हैं: इसमें भी भगवान् की माया की महिमा को पहचानते हुए, वे तनिक भी विचलित नहीं होते। वे केवल अपना धनुष द्वार पर रखकर शान्तिपूर्वक चले जाते हैं।

तीर्थयात्री का व्रत

आगे जो वर्णन आता है वह श्रीमद्भागवत के सबसे शान्त, हृदयस्पर्शी अंशों में से एक है — यह विलाप नहीं, अपितु हानि के तीर्थयात्रा में रूपान्तरित होने का वर्णन है। महान् पुण्य के फलस्वरूप कुरुवंश में जन्मे विदुर, हस्तिनापुर से निकलकर, पूर्णतः एकाकी, पृथ्वी के उन समस्त पावन स्थानों की यात्रा पर निकल पड़ते हैं जो भगवान् को समर्पित हैं — वे स्थान जहाँ, शास्त्र कहता है, भगवान् “सहस्र-एक रूपों में निवास करते हैं।” वे पैदल ही नगरों, पावन उपवनों, पर्वतों, वन-कुंजों, नदियों तथा निर्मल जलाशयों से होकर, भगवान् की मूर्तियों से सुशोभित प्रत्येक तीर्थ को खोजते हुए चलते हैं। वे संन्यासी के वेश में पृथ्वी का भ्रमण करते हैं, ताकि अपने ही परिचितों द्वारा भी पहचाने न जाएँ, वृक्षों से गिरे फलों जैसे शुद्ध आहार पर जीवित रहते हैं, प्रत्येक पावन जल में स्नान करते हैं, भूमि पर सोते हैं, शरीर-शृंगार का त्याग कर देते हैं, और श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले व्रतों का पालन करते हैं।



अकेले और अपरिचित रहते हुए, निर्वासित विदुर भारतवर्ष की भूमि पर पैदल भ्रमण करते हैं, पावन उपवनों, नदियों तथा भगवान् के तीर्थों की यात्रा एक भक्तिपूर्ण तपस्या के रूप में करते हुए (श्लोक 17-19)।

जब विदुर इस प्रकार भारतवर्ष की भूमि में भ्रमण कर रहे होते हैं, तब महाकाव्य की महान् घटनाएँ अन्यत्र अपना क्रम पूर्ण कर चुकी होती हैं। द्वारका के निकट प्रभास पहुँचने तक वे सुनते हैं कि युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण की सहायता से, सम्पूर्ण पृथ्वी के निर्विवाद सम्राट् बन चुके हैं — किन्तु साथ ही यह भी सुनते हैं कि उनके अपने ही कौरव कुटुम्बीजन आपसी ईर्ष्या के कारण नष्ट हो चुके हैं, “जैसे बाँसों का एक झुरमुट परस्पर घर्षण से उत्पन्न अग्नि में जलकर भस्म हो जाता है।” इस विनाश पर शोकाकुल होकर विदुर शान्तिपूर्वक पश्चिम की ओर बहने वाली सरस्वती नदी के तट की ओर चल पड़ते हैं।

यमुना तट तक ग्यारह पावन तीर्थ

सरस्वती के तट पर विदुर एक के बाद एक ग्यारह ऐसे स्थलों की यात्रा करते हैं जो महान् आत्माओं की स्मृति से पावन हैं — ऋषि त्रित, उशना (शुक्राचार्य के पिता) तथा असित; स्वायम्भुव मनु; राजा पृथु; अग्नि तथा वायु देवता; राजा सुदास; गौएँ; गुह (भगवान् कार्तिकेय); तथा वर्तमान मन्वन्तर के श्राद्धदेव — साथ ही ऋषियों और देवताओं द्वारा स्थापित अन्य अनेक तीर्थ, जिनके शिखरों पर सुदर्शन चक्र का चिह्न अंकित है, प्रत्येक दृश्य भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण कराता हुआ। वहाँ से उनका मार्ग समृद्ध सौराष्ट्र देश तथा सौवीर, मत्स्य और कुरु-जांगल राज्यों से होकर यमुना नदी के तट तक पहुँचता है — और वहाँ, अप्रत्याशित रूप से, उनकी भेंट भगवान् के एक अन्य महान् एवं प्रिय भक्त उद्धव से होती है।



विदुर सरस्वती नदी के तट पर ग्यारह पावन तीर्थों की यात्रा करते हैं, जिनमें से प्रत्येक किसी महान् ऋषि, राजा अथवा देवता की स्मृति से पावन है, इससे पूर्व कि वे यमुना तट की ओर आगे बढ़ें (श्लोक 20-24)।

दोनों गहरे स्नेह से आलिंगनबद्ध होते हैं — उद्धव, जो कभी देवगुरु बृहस्पति के शिष्य रहे थे, अब पूर्ण मानसिक शान्ति को प्राप्त कर चुके हैं। विदुर, आनन्दविभोर होकर, तुरन्त उनसे अपने प्रिय सम्बन्धियों, यादवों के, जिनकी रक्षा स्वयं भगवान् करते हैं, कुशल-क्षेम पूछना आरम्भ कर देते हैं।



विदुर और उद्धव यमुना के तट पर स्नेहपूर्वक आलिंगनबद्ध होते हैं — भगवान् के दो दीर्घकाल से बिछुड़े भक्त, विदुर की वर्षों की एकाकी तीर्थयात्रा के पश्चात् पुनः मिलते हुए (श्लोक 25)।

हर प्रिय नाम की चिन्ता

आगे जो आता है वह सिद्धान्त नहीं, अपितु भक्ति का सबसे अन्तरंग स्वरूप है — नामों की एक दीर्घ, स्नेहिल सूची। विदुर सर्वप्रथम बलराम तथा श्रीकृष्ण, “दोनों आदि-पुरुषों,” के विषय में पूछते हैं, जो ब्रह्मा की प्रार्थना के उत्तर में पृथ्वी पर प्रकट हुए, जिज्ञासा करते हुए कि क्या वे शूरसेन के घर में कुशल से हैं। वे वासुदेव के विषय में पूछते हैं, श्रीकृष्ण के पिता तथा स्वयं उनके बहनोई, जो अपनी बहनों के प्रति सदैव उदार रहे हैं। वे प्रद्युम्न, यादव सेनापति के विषय में पूछते हैं; उग्रसेन के विषय में, जो अपने सिंहासन पर पुनः स्थापित हुए यद्यपि उन्होंने सारी आशा त्याग दी थी; साम्ब के विषय में, जो अपने दिव्य पिता के समान हैं; सात्यकि के विषय में, जिन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या सीखी; विवेकी एवं निष्पाप अक्रूर के विषय में, जो प्रेम से इतने अभिभूत हो गए थे कि श्रीकृष्ण के चरण-चिह्नों से अंकित मार्ग की धूल में लोटने लगे थे; देवकी के विषय में, भगवान् की माता; दिव्य अनिरुद्ध के विषय में; तथा हृदीक, चारुदेष्ण, गद आदि परिवारजनों के विषय में — प्रत्येक प्रश्न के साथ, लगभग अनायास ही, यह भी बताते हुए कि वह व्यक्ति कौन है और भगवान् के लिए उसका क्या महत्त्व है।

केवल यादव-कुल के विषय में इतनी विस्तृत जिज्ञासा करने के पश्चात् ही विदुर अपने कुल, पाण्डवों की ओर मुड़ते हैं। क्या युधिष्ठिर अब भी अर्जुन तथा अच्युत (श्रीकृष्ण) — अपनी दो भुजाओं — की सहायता से धर्म की रक्षा कर रहे हैं? क्या भीम का कौरवों के प्रति दीर्घकालीन क्रोध अन्ततः शान्त हो गया है? क्या अर्जुन, जिन्होंने कभी किरात के वेश में स्वयं भगवान् शिव को प्रसन्न किया था, अब अपने शत्रुओं के साथ शान्ति में हैं? क्या जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेव, जो अपने सौतेले भाइयों द्वारा पलकों के समान नेत्रों की भाँति सुरक्षित हैं, अपने पुनः प्राप्त राज्य में हर्षित हैं? और पृथा — उनकी भाभी कुन्ती — जो अब केवल अपने पुत्रों के लिए जीवित हैं, यद्यपि बहुत पहले श्रेष्ठ पाण्डु से विधवा हो चुकी हैं? अन्ततः, स्पष्ट पीड़ा के साथ, विदुर अपने ही भाई धृतराष्ट्र के विषय में पूछते हैं, जिन्होंने अपने भतीजों के प्रति अन्याय किया और अपने ही हितैषी को अपनी राजधानी से निष्कासित कर दिया, तथा जो, विदुर को भय है, “नरक की ओर अग्रसर हैं।”



नदी-तट पर साथ बैठे, विदुर उद्धव से सम्पूर्ण यादव तथा पाण्डव कुलों के कुशल-क्षेम के विषय में पूछते हैं — बलराम-श्रीकृष्ण, वासुदेव, अक्रूर, युधिष्ठिर, भीम, तथा अनेक अन्य (श्लोक 26-41)।

तनिक भी आश्चर्यचकित नहीं: विदुर का समापन-चिन्तन

तत्पश्चात्, आश्चर्यजनक रूप से, विदुर का स्वर शोक से एक स्थिर शान्ति की ओर बदल जाता है। वे कहते हैं कि वे अपने भाई द्वारा किए गए व्यवहार से तनिक भी आश्चर्यचकित अथवा दुःखी नहीं हैं — क्योंकि यह स्वयं श्रीहरि, परम शासक, हैं, जो एक साधारण मनुष्य की भाँति आचरण करते हुए “मनुष्यों की बुद्धि को मोहित” करते हैं (श्लोक 42)। विदुर कहते हैं कि उन्होंने केवल संसार में अलक्षित होकर विचरण करना सीख लिया है, जहाँ कहीं भी भगवान् की कृपा उनकी महिमा प्रकट करे, उसे देखते हुए। कौरवों के दुराचार के प्रति भगवान् की प्रतीत सहनशीलता भी, विदुर बताते हैं, उद्देश्यपूर्ण थी — भगवान् ने कौरवों को उनके पाप करते ही दण्डित नहीं किया, अपितु प्रतीक्षा की, जिससे एक ही साथ पृथ्वी को धन, विद्या और अनुयायियों के मद से भारित अन्य अहंकारी राजाओं से भी मुक्त कर सकें (श्लोक 43)।

विदुर तब इस धैर्य के मूल में छिपे सिद्धान्त को उजागर करते हैं। एक साधारण जीव का जन्म उसके अपने पूर्वकर्मों के अधीन होता है, किन्तु भगवान् का शरीर धारण करना किसी बाह्य कारण पर निर्भर नहीं — वे केवल इसलिए शरीर धारण करते हैं ताकि सन्मार्ग से भटके हुआओं का उन्मूलन कर सकें, और केवल इसलिए कार्य करते हैं ताकि साधारण जन उन्हें पहचान सकें, यद्यपि वास्तव में वे कभी हमारी भाँति किसी कर्म के कर्ता नहीं होते। विदुर तर्क करते हैं कि जो वास्तव में तीनों गुणों से सर्वथा परे स्थित हो, उसके पास शरीर धारण करने अथवा किसी कर्म-व्यवस्था में उलझने का अन्यथा कोई कारण शेष नहीं रहता।

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय

कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।

नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं

परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥ ४४ ॥

ajasya janmotpatha-nāśanāya karmāṇy akartur grahaṇāya pumsām nanv anyathā ko 'rhati deha-yogaṁ paro guṇānām uta karma-tantram

अर्थ: अजन्मा भगवान् अपना प्राकट्य केवल उन जनों के विनाश के लिए धारण करते हैं जो सन्मार्ग से भटक गए हैं, और वे अपने समस्त कार्य केवल इसलिए करते हैं ताकि लोग उन्हें पहचान सकें, यद्यपि वे स्वयं कभी वास्तव में किसी कर्म के कर्ता नहीं होते; अन्यथा, जो पूर्णतः तीनों गुणों से परे स्थित है, वह शरीर धारण करना अथवा किसी कर्म-व्यवस्था को स्वीकार करना क्यों चाहेगा? (स्कन्ध 3, अध्याय 1, श्लोक 44)

हृदय में इस समझ को स्थिर करते हुए विदुर अपने मित्र से अन्तिम, सरल अनुरोध करते हैं।

तस्य प्रपन्नाखिललोकपाना-मवस्थितानामनुशासने स्वे ।

अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्ता सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥

tasya prapannākhila-lokapānām avasthitānām anuśāsane sve arthāya jātasya yaduṣv ajasya vārtāṁ sakhe kīrtaya tīrtha-kīrteḥ

अर्थ: हे मित्र, मुझे उन पावन-कीर्ति भगवान् के समाचार सुनाओ, जो अजन्मा होते हुए भी यदुवंश में उन समस्त लोकपालों के हित के लिए अवतरित हुए जिन्होंने उनकी शरण ली है और जो उनके शासन के अन्तर्गत स्थित हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 1, श्लोक 45)

इस हृदयस्पर्शी अनुरोध के साथ तृतीय स्कन्ध का प्रथम अध्याय समाप्त होता है, जो आगामी अध्यायों में उद्धव के दीर्घ एवं स्नेहपूर्ण उत्तर की भूमिका तैयार करता है।



विदुर, अपने निर्वासन के बावजूद शान्तचित्त, यह चिन्तन करते हैं कि भाग्य के प्रत्येक मोड़ में स्वयं भगवान् की माया कार्यरत है, और उद्धव को सम्बोधित करते हुए श्रीकृष्ण का समाचार सुनने के अनुरोध के साथ अपनी बात समाप्त करते हैं (श्लोक 42-45)।

इस अध्याय को मुख्य शिक्षाएँ

1. धर्मपूर्ण परामर्श की कीमत सब कुछ हो सकती है, फिर भी वह देने योग्य है। विदुर यह जानते हुए भी अपने भाई से सत्य कहते हैं कि उसका स्वागत नहीं होगा; जब इसकी कीमत उन्हें अपना घर देनी पड़ती है, तब भी वे बोलने पर पछताते नहीं (श्लोक 11-16)।
2. बिना विचलित हुए अपमान सहना स्वयं एक आध्यात्मिक उपलब्धि है। विदुर अपने ही अपमान में भी भगवान् की माया को पहचानते हैं, और क्रोध के स्थान पर शान्ति के साथ प्रस्थान करते हैं — स्वयं के बचाव की इच्छा का एक शान्त किन्तु सम्पूर्ण त्याग (श्लोक 16)।
3. हानि को तीर्थयात्रा में रूपान्तरित किया जा सकता है। अपने निर्वासन पर शोक करने के स्थान पर विदुर उसे वर्षों की भक्तिपूर्ण यात्रा में बदल देते हैं, भगवान् की उपस्थिति से पावन प्रत्येक स्थान की यात्रा करते हुए (श्लोक 17-24)।
4. भगवान् के भक्तों के प्रति प्रेम स्वयं भक्ति है। विदुर की यादव तथा पाण्डव कुलों के प्रत्येक सदस्य के विषय में विस्तृत जिज्ञासा — जो कर्तव्य से नहीं, स्पष्ट आनन्द से पूछी गई — दर्शाती है कि किसी भक्त के कुशल-क्षेम के विषय में पूछना स्वयं भक्ति का एक कार्य है (श्लोक 26-41)।
5. भक्त के शोक का भी विश्राम-स्थल शरणागति में है। विदुर अपने निर्वासन के प्रति कटु नहीं हैं; वे इसे भगवान् की अगम्य लीला का भाग मानते हैं, जो साधारण मानवीय घटनाओं का उपयोग शरणागतों की रक्षा तथा सभी को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए करती है (श्लोक 42-45)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय को केवल पृष्ठभूमि — एक ग्रन्थ से दूसरे ग्रन्थ के मध्य आवश्यक सेतु — के रूप में पढ़ना सरल होगा। किन्तु इसके साथ थोड़ी देर और ठहरें, और कुछ गहरा उभर आएगा। विदुर ने अभी-अभी सत्य बोलने के “अपराध” में, घर, परिवार तथा प्रतिष्ठा से वंचित होकर, वर्षों तक पृथ्वी पर अकेले भ्रमण किया है। और जब वे अन्ततः इतने समय बाद एक मित्र से मिलते हैं, तो वे अपने ही दुःख का वर्णन करके आरम्भ नहीं करते। वे सबके विषय में पूछते हैं। पहले बलराम और श्रीकृष्ण, फिर वासुदेव, फिर दर्जनों अन्य नाम, प्रत्येक को स्पष्ट स्नेह के साथ स्मरण करते हुए, इससे पहले कि वे अपने ही भाई की क्रूरता का उल्लेख तक करें — और जब वे उसका उल्लेख करते भी हैं, तो वह धृतराष्ट्र की नियति के प्रति शोक के साथ है, अपने ऊपर हुए अन्याय के प्रति क्रोध के साथ नहीं। यही परिपक्व भक्ति का स्वरूप है: हृदय भगवान् तथा उनके भक्तों के प्रति इतने प्रेम से भरा हो कि उसमें आत्म-दया के लिए लगभग कोई स्थान न बचे। विदुर की तीर्थयात्रा ने उन्हें केवल पावन नदियों और तीर्थों तक ही नहीं पहुँचाया; उसने उन्हें कटुता से रिक्त कर, इस क्षमता से भर दिया कि वे सच्चे आनन्द के साथ पूछ सकें, “क्या सब कुशल से हैं?”

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने ही जीवन के किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में सोचें जिसके बारे में आपने बहुत दिनों से नहीं पूछा है — कोई मित्र, कोई सम्बन्धी, कोई ऐसा व्यक्ति जिससे दूरी, गलतफ़हमी, अथवा जीवन की व्यस्तता के कारण सम्पर्क छूट गया हो। विदुर के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, एक शान्त क्षण निकालकर वास्तव में यह जानने की इच्छा करें कि वे कैसे हैं, और सम्भव हो तो सम्पर्क करके पूछें। ऐसा करने से पहले, एक क्षण शान्ति में बैठकर दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को उस पुराने दर्द को शान्त करने दें जो आपके और उस पूछने के बीच खड़ा हो सकता है — ठीक वैसे ही जैसे इसने विदुर के दीर्घ निर्वासन के वर्षों को एक तीर्थयात्री की शान्ति में बदल दिया।

उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का प्रथम अध्याय, अपने बाह्य स्वरूप में, एक विभाजित परिवार तथा एक भक्त की दीर्घ, एकाकी भटकन की कथा है। किन्तु इसका वास्तविक केन्द्र वह क्षण है जब हानि प्रेम में विलीन हो जाती है: एक अपमानित, निर्वासित व्यक्ति, जिसने भक्तिपूर्वक एक पूरे महाद्वीप की यात्रा की है, अन्ततः एक मित्र के पास बैठता है — और अपने ही शोक को व्यक्त करने के स्थान पर, शेष अध्याय एक-एक प्रिय नाम लेकर यह पूछने में बिता देता है कि क्या शेष सब लोग कुशल से हैं। इस स्नेह के पीछे श्रीशुकदेव का व्यापक उद्देश्य है: परीक्षित को — और हमें — द्वितीय स्कन्ध के विशाल, निर्वैयक्तिक ब्रह्माण्ड-विज्ञान से तृतीय स्कन्ध की उस अन्तरंग, वैयक्तिक, कथा-रूपी भक्ति की ओर ले जाना जो इस स्कन्ध की विशेषता बनेगी। विदुर के अन्तिम शब्द, उस भगवान् का समाचार माँगते हुए जो “यदुवंश में उन सबके हित के लिए अवतरित हुए जिन्होंने उनकी शरण ली है,” वही द्वार हैं जिससे होकर इस स्कन्ध की शेष कथा आगे बढ़ेगी।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, अध्याय 1, पृष्ठ 133–139।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-3-adhyay-1-uddhav-vidur-milan.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट